शोध मंथन Vol. XV No.I Jan.-Mar.2024 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

तिलक की दृष्टि में स्वराज

प्राप्तिः 20.03.2024
स्वीकृतः 26.03.2024

27

डा० शशि नौटियाल
शोध निदेशक
प्रोफेसर, इतिहास विभाग
जे० वी० जैन कॉलेज, सहारनपुर

आलोक कुमार
शोधार्थी, असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
गोचर महाविद्यालय, रामपुर मनिहारान, सहारनपुर
ईमेलः *aloketah383@gmail.com*

सारांश

"स्वराज का वास्तविक अर्थ है कि सत्ता जनता में केन्द्रित हो। इसका अर्थ है कि इस व्यवस्था में अधिकारी शक्तिशाली नहीं होंगे वरन् राज्य की सम्प्रभुता शक्शिाली होगी।" स्वराज की अवधारणा व्यापक है स्वराज का अर्थ केवल राजनैतिक स्तर पर विदेशी शासन से स्वाधीनता प्राप्त करना ही नहीं है, बल्कि इसमें सांस्कृति एवं नैतिक स्वाधीनता का विचार भी निहित है। यह राष्ट्र निर्माण में परस्पर सहयोग व मेल–मिलाप पर बल देता है। शासन के स्तर पर यह सच्चे लोकतन्त्र का पर्याय है।

स्वराज का अर्थ है स्वयं का शासन। इसका प्रयोग सबसे पहले शिवाजी ने मुगल साम्राज्य और आदिलशाही सल्तनत से स्वशासन प्राप्त करने के लिए किया था। इस शब्द का प्रयोग महर्शि दयानन्द सरस्वती और बाद में गाँधीजी द्वारा 'होम रूल' के प्रर्यायवाची के रूप में किया गया था। यह शब्द सामान्यतः विदेशी प्रभुत्व से भारतीय स्वतन्त्रता की अवधाराणा को व्यक्त करता है। स्वराज एक स्थापित सरकार द्वारा नहीं बल्कि व्यक्तियों और सामुदायिक निर्णय के माध्यम से स्वशासन पर जोर देता है। स्वराज अंग्रेजी सरकार द्वारा अपनायी गयी राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ है। महात्मा गाँधी के स्वराज की अवधारणा ने भारत द्वारा ब्रिटिश राजनैतिक, आर्थिक, नौकरशाही, कानूनी, सैन्य और शैक्षणिक संस्थाओं को त्यागने की वकालत की थी।

मुख्य बिन्दु

स्वराज, सम्प्रभुता, सामुदायिक निर्णय, स्वशासन, नौकरशाही।

बाल गंगाधर तिलक का भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष में विशेष महत्व है। उन्हें आधुनिक भारत का शिल्पकार भी कहा जाता है। तिलक भारत में स्वराज के समर्थक थे। उनका यह कथन कि 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' आज भी भारतीय जनमानस के हृदयों में अंकित है। बाल

गंगाधर तिलक ने भारत को स्वराज का एक नया स्वरूप दिखाया। वे स्वदेशी के समर्थक और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के प्रणेता थे।

स्वराज को परिभाषित करते हुए तिलक ने कहा– "स्वराज का वास्तविक अर्थ है कि सत्ता जनता में केन्द्रित हो। इसका अर्थ है कि इस व्यवस्था में अधिकारी शक्तिशाली नहीं होंगे वरन् राज्य की सम्प्रभुता शक्शिाली होगी।"[1] स्वराज की अवधारणा व्यापक है स्वराज का अर्थ केवल राजनैतिक स्तर पर विदेशी शासन से स्वाधीनता प्राप्त करना ही नहीं है, बल्कि इसमें सांस्कृति एवं नैतिक स्वाधीनता का विचार भी निहित है। यह राष्ट्र निर्माण में परस्पर सहयोग व मेल–मिलाप पर बल देता है। शासन के स्तर पर यह सच्चे लोकतन्त्र का पर्याय है।

स्वराज का अर्थ है स्वयं का शासन। इसका प्रयोग सबसे पहले शिवाजी ने मुगल साम्राज्य और आदिलशाही सल्तनत से स्वशासन प्राप्त करने के लिए किया था। इस शब्द का प्रयोग महर्षि दयानन्द सरस्वती और बाद में गाँधीजी द्वारा 'होम रूल' के प्रर्यायवाची के रूप में किया गया था।[2] यह शब्द सामान्यतः विदेशी प्रभुत्व से भारतीय स्वतन्त्रता की अवधाराणा को व्यक्त करता है। स्वराज एक स्थापित सरकार द्वारा नहीं बल्कि व्यक्तियों और सामुदायिक निर्णय के माध्यम से स्वशासन पर जोर देता है। स्वराज अंग्रेजी सरकार द्वारा अपनायी गयी राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ है। महात्मा गाँधी के स्वराज की अवधारणा ने भारत द्वारा ब्रिटिश राजनैतिक, आर्थिक, नौकरशाही, कानूनी, सैन्य और शैक्षणिक संस्थाओं को त्यागने की वकालत की थी।[3]

तिलक एक प्रजातांत्रिक यथार्थवादी होने के साथ ही एक वेदांतवेत्ता भी थे जो व्यक्ति के आर्थिक और राजनैतिक स्वतंत्रता के मूल को आध्यात्मिक स्वतंत्रता से जोड़ना चाहते थे। उन्होंने कहा–

"स्वराज्य क्या है? अपनी आत्मा पर स्थिर और निर्भर रहने का नाम स्वराज्य है मेरा विश्वास है कि लौकिक स्वाधीनता पर ही आत्मिक स्वाधीनता निर्भर है।"[4]

आगे इसी क्रम में उन्होंने कहा "स्वतंत्रता होमरूल आन्दोलन की आत्मा है। व्यक्ति की जीवन आत्मा उसकी स्वतंत्रता है जो वेदान्त के अनुसार ईश्वर से पथ्थक नहीं हो सकती वरन् उसके साथ तादाम्य स्थापित करती है। यह स्वतंत्रता ऐसा सिद्धांत है जो कभी नष्ट नहीं हो सकती।"[5]

तिलक के अनुसार स्वतंत्रता की इच्छा व्यक्ति की प्राकृतिक प्रवृत्ति है। किसी भी व्यक्ति को यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है कि वह स्वतंत्रता प्राप्त करने के योग्य है, भले ही वह परतंत्र राष्ट्र का नागरिक ही क्यों न हो। लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' में प्रतिपादित किया है–

"वेदान्त शास्त्र का निश्चय है कि सच्चा स्वातंत्र्य न तो बुद्धि का है, न ही मन का है यह तो शुद्ध बुद्धि अर्थात् आत्मा का है। यह स्वतांत्र्य न तो आत्मा को कोई दे सकता है नहीं छीन सकता है। नित्य, बुद्ध, शुद्ध, निर्मल और स्वतंत्र परमात्मा का अंशरूप जीवात्मा जब सांसारिक उपाधि के बंधन में पड़ जाता है तब वह स्वतंत्र ऋति से कहे अनुसार बुद्धि और मन में प्रेरणा किया करता है क्योंकि उसमें कर्म–सृष्टि के प्रेरणा की प्रबलता हो जाती है।"[6]

तिलक के अनुसार स्वराज्य का मूल व्यक्ति की राजनैतिक स्वतंत्रता है। उनके लिए राजनैतिक स्वतंत्रता मनुष्य के नैतिक अस्तित्व के लिए आवश्यक है जिसके बिना वह अधोगति को

प्राप्त होता है। जिस प्रकार से एक व्यक्ति के लिए मोक्ष ही अंतिम लक्ष्य है ठीक उसी प्रकार स्वाधीनता किसी राष्ट्र की आत्मा का अंतिम लक्ष्य है। उन्होंने कानपुर जनसभा में एक ओजस्वी भाषण में कहा, "राष्ट्र के नैतिक, भौतिक और बोद्धिक क्षेत्र में होने वाली प्रगति उसी स्वतंत्रता पर निर्भर है जिससे हमें वंचित रखा गया है।"[7]

उन्होंने लॉक के समान व्यक्ति के उन 'प्राकृतिक अधिकारों का समर्थन किया है जो मानवीय मूल्यों और नैतिकता पर आधारित है। उन्होंने राष्ट्र के आत्मोदय के लिए भी राजनैतिक स्वतंत्रता की माँग की है। नागर भाषण में उन्होंने स्पष्ट कहा था–

"हम एक राष्ट्र हैं, इस संसार में हमें एक ही उत्तरदायित्व निभाना है। हमें वे अधिकार मिलने चाहिए जो मनुष्य को प्रकृति से प्राप्त हैं। हमें स्वतंत्रता चाहिए। हम अपने मामलों को निपटा सकें यह अधिकार हमारे हाथ में आना चाहिए।"[8]

''उत्तरदायी राजनीतिक व्यवस्था का दूसरा नाम हीं स्वराज्य है अर्थात वह माँग स्वराज्य की माँग है जिसमें हम स्वसंबंधी कार्यों की व्यवस्था अपने हाथ से करने की व्यवस्था चाहेगें।''[9]

एक बार उन्होने लिखा– ''स्वराज्य हमारी समृद्धि की नींव है न कि उसका शिखर।''[10] अर्थात् वे स्वराज्य की स्थापना चाहते थे ताकि भारतीयों का उत्तरोत्तर सर्वागिण विकास हो सके। उन्होने बेलगाँव (स्वराज्य पर प्रथम 1 मई 1916 ई0) में व्याख्यान देते हुए कहा–

''स्वराज्य की कल्पना उसी समय होती है, जब हम किसी ऐसे राज्य या शासन में हों जिसे हम 'स्व' अर्थात अपना नहीं कह सकें। जब ऐसी स्थिती प्राप्त होती है तभी उसके लिए उद्योग आरम्भ होता है। इस समय आपकी भी स्थिती यहीं है। आपके शासक आपके धर्म, आपकी जाति, यहाँ तक कि आपके देश के भी नहीं है। स्वराज्य आन्दोलन इस समझ से किया जा रहा है कि इस समय यह राज्य प्रबंध जिनके हाथों में है उनसे लेकर किसी ऐसे हाथों में जाना चाहिए जो लोगों के लिए हितकर हो। घर में कुँआ खुदवाने से लेकर जंगल से लकड़ी और घास काटने तक कलेक्टर को अर्जी देनी पड़ती है अर्थात् बिल्कुल बेकारों और असहायों की स्थिति हो रही है। यह व्यवस्था हमें नहीं चाहिए, इससे अच्छी व्यवस्था हमें चाहिए, और वह अच्छी व्यवस्था स्वराज्य है। दूसरों की व्यवस्था चाहे जितनी हीं अच्छी क्यों ना हो, तो भी यह बात नहीं हो सकती कि लोगों को वह व्यवस्था सदा पसन्द हीं आये। स्वराज्य का यही तत्व है। अपने संबंध की व्यवस्था अपने हाथ में रखने की माँग हीं स्वराज्य की माँग है। पंचतंत्र के 'त्रयाणां धूर्तानां' की तरह आप कहते है कि भारतवासी अभी स्वराज्य के पात्र नहीं हैं। हम लोग पात्र क्यों नहीं हैं ? तुम्हारा यह कहना कि 'तुम्हें हम देना नहीं चाहते' ठीक है, इसके बदले यह मत कहो कि तुम योग्य नहीं हो।''[11]

बेलगॉव में श्री तिलक ने स्वराज्य और राजभक्ति पर भाषण देते हुए यह स्पष्ट किया कि भारतीय युद्ध में की गयी सेवाओं के प्रतिफलस्वरुप अपने अधिकारों की माँग कर रहे हैं यह कहना सरासर गलत है, क्योंकि हमारी माँगें युद्ध से बहुत पहले की हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि हमारी इच्छा ब्रिटिश शासन के स्थान पर किसी और विदेशी शक्ति द्वारा भारत में सत्ता स्थापित करने की नहीं है। उन्होंने घोषणा किया–

''स्वराज्य का अर्थ यह नहीं है कि अंग्रेजों को यहाँ से खदेड़ दिया जाय। यह कोई बात नहीं है कि राजा कौन है? हमें अपने अधिकार मिल जाने चाहिए यहीं हमारे लिए पर्याप्त है। हम किसी भी राजा के अधीन हों, हमें स्वशासन के अधिकार मिल जाने चाहिए।[12]'' इसीक्रम में उन्होंने आगे कहा ''इस तथ्य में कोई संदेह नहीं कि वर्तमान शासन व्यवस्था की अनेक कमियों के कारण हीं देश में असंतोष और अशांति फैली हुयी है। नौकरशाही शक्ति त्यागने को तैयार नहीं है क्योंकि उसे भय है कि वह अपनी प्रतिष्ठा खो बैठेगी। किन्तु युद्ध में हमारी सेवाओं ने इंग्लैण्ड के जनता की आँखे खोल दी हैं, और उन्हें विश्वास दिला दिया है कि नौकरशाही का अविश्वास उनके अपने कारण था।[13]''

इसीलिए श्री तिलक ने मात्र नौकरशाही में अपने लोगों को रखने अर्थात परिवर्तन की बात की। इसके पीछे दार्शनिक आधार यह था कि श्री तिलक व्यक्ति की स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता के साथ हीं साथ वेदों के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा से भी अनुप्राणित थे। इसीलिए उन्होंने भारत के लिए स्वाधीन उपनिवेश प्रतिमान आधारित व्यवस्था की माँग की। उन्होने अहमद नगर में एक भाशण में स्पष्ट रुप से कहा–

''स्वराज्य का अर्थ सम्राट के शासन का उन्मूलन करना और किसी विदेशी शक्ति या देशी रियासत का शासन स्थापित करना नहीं है। हमें मंदिर के देवताओं को नहीं हटाना है, हमें केवल पुजारियों को बदलना है। स्वराज्य का अभिप्राय केवल यह है कि भारत के आन्तरिक मामलों का संचालन और प्रबंधन भारतवासियों के हाथ में हो। हम ब्रिटेन के सम्राट को बनाए रखने में विश्वास करतें हैं।[14]"

वस्तुतः श्री तिलक ने इस बात का गहन अध्ययन किया था कि विदेशी नौकरशाह प्रत्येक महत्वपूर्ण पदों पर कब्जा जमाए हुए हैं और यही कारण है कि हमारे अन्दर उत्साह, साहस और आरम्भक गुणों का दिनों–दिन पतन हो रहा है, जो हमारे नैतिक और बौद्धिक पतन का कारण है, फलस्वरूप हमारे आत्मविश्वास में अत्यधिक कमी आयी है और हम हीनभावना के शिकार हुए हैं जिसका फायदा उठाकर नौकरशाही हमें 'स्वराज्य' के अयोग्य और स्वयं को हमारा शिक्षक सिद्ध करना चाहती है। यही कारण था राष्ट्र निर्माता तिलक भारत के लिए शीघ्रातिशीघ्र स्वाधीनता चाहते थे तथापि उन्हें भय था कि–

''दासता की अवधि लम्बे समय तक होने के कारण भारतीयों में स्वतंत्रता और स्वाधीनता की भावना, आत्मबल और संघर्ष क्षमता पर निश्चय हीं बुरा प्रभाव पड़ा है। परिणामस्वरुप यदि अंग्रेजों ने भारत में सत्ता परित्याग का मन बना भी लिया तो इसमें संदेह नहीं कि भारतीय, नवीन शक्ति की दासता स्वीकार करने में हिचकिचायेंगे।[15]"

श्री तिलक इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि तत्कालीन आक्रामक साम्राज्यवादी सत्ताओं की गिद्ध दृष्टि भारत पर सदैव से लगी हुयी थी इसीलिए वे अपने सुरक्षात्मक हितों के लिए ब्रिटिश सत्ता से बाह्य संबंध बनाए रखना चाहते थे। उन्होने 12 जनवरी 1917 ई० को अकोला भाषण के दौरान कहा–

''भारत की वर्तमान शासन पद्धति सदोश है और बिना स्वराज्य के वह नहीं सुधर सकेगी। यह भारत और इंग्लैण्ड का संबंध तोड़ता नहीं है, यह दोनों के संबंध को दृढ़ करता है। हमें अपने

विशुद्ध स्वार्थ के लिए भी इंग्लैण्ड की रक्षा चाहिए। आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि वह इंग्लैण्ड का संबंध हीं है तथा इंग्लैण्ड की दी हुयी शिक्षा हीं है जिसने आपके हृदय को महत्वाकांक्षाओं से भर दिया है।[16]"

यद्यपि कि उन्होने नौकरशाही की कटु आलोचना करते हुए उसके चालबाजियों पर तथा साम्राज्यवादी सत्ता की कुटिल प्रवर्षत्ति पर दृष्टिपात करते हुए कहा–

''कोई भी राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र पर विशुद्ध कल्याणकारी उद्देश्य से कभी भी शासन नहीं करता। राष्ट्रीय हित की सिद्धि के लिए ही साम्राज्य निर्मित और प्रयुक्त होते हैं।[17]"

इसीलिए श्री तिलक ने भारत का आन्तरिक प्रशासन बुद्धिमान और निर्वाचित भारतीयों के हाथों में दिये जाने की अपील की, ताकि वे साम्राज्यवादी सत्ता के आर्थिक शोषण से बचते हुए अपने हितों का संवर्धन कर सकें।

उन्होंने राष्ट्रीय आत्मा की मुक्ति के लिए प्रत्येक भारतीय से अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संवैधानिक तरीके से सम्राज्यवादी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करने की अपील की। उन्होंने पाश्चात्य राजनैतिक दर्शन और ऐतिहासिक दृष्टांतों को प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया कि–

''प्रत्येक राष्ट्र न्याय और स्वतंत्रता दोनों हीं से प्रेम करता है साथ हीं वह परिमार्जन के शिखर पर पहुँचने के गर्व की अनुभूति चाहता है, परन्तु पराधीन भारत की कमजोर आर्थिक व्यवस्था के कारण हम इन सुधारों को प्राप्त करने में असमर्थ हैं, और इसका प्रमुख कारण हमारे शासकों में विदेशीपन का होना है।[18]''

उग्रराष्ट्रवादी अवधारणा के चलते श्री तिलक की बार–बार आलोचना की जाती थी। नरमपंथीयों द्वारा यह कहा जाता था कि जैसे हीं उदारवादी सत्ता अस्तित्व में आयेगी परिस्थितियाँ बदल जायेंगी, और अपीलों तथा वार्ताओं से सुधार होगा। परन्तु उदारवादी दल के सत्ता में आनेपर ऐसा नहीं हुआ। इस अवसर पर श्री तिलक ने नरमपंथीयों को आड़े हाथों लेते हुए कहा कि रुढ़िवादीयों और उदारवादीयों में सूक्ष्म अन्तर है और वह यह है कि रुढ़िवादि जहाँ दमनात्मक नीतियों के प्रवर्तन में किसी प्रकार के लज्जा की अनुभूति नहीं करते, वहीं उदारवादी इन नीतियों के साथ उदारवादी आश्वासनों का मरहम भी लगा देते हैं। अतः यह आशा करना व्यर्थ है कि–

एक साम्राज्यवादी सत्ता और उसके पराधीन देश के मध्य उपनिवेशवादी व्यवस्था के अन्तर्गत किसी प्रकार की फलदायी वार्ता और समान सहयोग जैसा विशिष्ट सम्बन्ध भी अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर दृष्टिगोचर हो सकता है।[19]

श्री तिलक ने महसूस किया कि ब्रिटेन में सत्ता चाहे जिस पार्टी की हो, वे हमें आसानी से स्वतंत्रता नहीं प्रदान करेंगे। उन्होंने स्पष्ट किया कि मोर्ले जैसा दार्शनिक शासक भी कोई ऐसा प्रभावशाली सुधार नहीं ला सका जो भारतीयों के लिए कल्याणकारी हों, ऐसे में हम इस क्रूर नौकरशाही से और क्या आशा करें ? अब स्वतंत्रता अर्थात् 'स्वराज्य' प्राप्त करने के लिए एकमात्र साधन 'स्व' अर्थात स्वयं के आत्मबल पर विश्वास करना है। एक पराधीन राष्ट्र किसी भी साम्राज्यवादी सत्ता पर निःस्वार्थ दिशा–निर्देश और सहायता की आशा से विश्वास नहीं कर सकता है, चाहे साम्राज्यवादी कितना ही अधिक विकासशील और उदारवादी होने का ढिंढोरा क्यों ना पीटते हों।

उन्होंने स्पष्ट किया कि स्वयं पर भरोसा करने का तात्पर्य कि अधिक से अधिक मात्रा में जनता की रुचि और भागेदारी 'राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन' को सबल बनाने में हो, ताकि भारत में श्वेत नौकरशाही से ब्रिटिश संसद और जनता तक इस आन्दोलन की शक्ति को महसूस कर सके। नागर में एक भाषण के दौरान उन्होंने कहा–

''स्वराज कोई ऐसा पका फल नहीं है, जो आकाश से आपके मुँह में आ गिरने को तैयार हो, और न हीं कोई ऐसा सक्षम व्यक्ति है जो आपके मुँह में इसे डाल सके। यह आन्दोलन उस परिश्रम का आरम्भ।[20]"

इसी क्रम में उन्होंने स्पष्ट किया कि अवसर पड़ने पर अंग्रेजीसत्ता स्वयं को अजेय सिद्ध करने का प्रयास करती है, और इसका एकमात्र कारण है कि हमारे लोग इस कुटिल नौकरशाही के विरूद्ध खड़े हो कर इसकी सम्पूर्ण अहितकारी नीतियों के विरुद्ध चुनौती उत्पन्न करने का साहस नहीं कर पाते, जबकि हमें जनमत को जागष्त करना है, ताकि नौकरशाही के मनमाने रवैये पर अंकुश लगाया जा सके। वे बोले–

"जनमत जैसी एक चीज़ होती है, जिससे स्वेच्छाचारी और तानाशाह भय खाते हैं, लेकिन ऐसा जनमत यहाँ उत्पन्न करने के लिए हमने कुछ नहीं किया है।[21]"

उन्होंने फ्रांस और अमेरिकी क्रान्ति का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए जनमत के प्रभाव को स्पष्ट किया। उन्होंने रुस के जारशाही के विरुद्ध जनआक्रोश का बृहद वर्णन किया और तो और स्वयं ब्रिटेन में जनता को राजा द्वारा शक्ति हस्तांतरण का उपयुक्त उदाहरण रखते हुए उन्होंने कहा–

"शासक अत्याचारी हो जाता है क्योंकि जनता अपनी शक्ति नहीं जताती, यदि वह एक होकर उसका विरोध करे तो शासकं शक्तिहीन हो जायेंगे।[22]"

उन्होंने जनमत की प्रभावशाली उपस्थिति पर व्यापक दृष्टि रखते हुए व्याख्यात्मक शैली में जनमत के प्रभावों पर प्रकाश डालते रहे। वें चाहते थे कि 'भारतीय इस सामान्य तत्थ्य को समझें कि मात्र मुट्ठी भर अंग्रेज भारत पर शासन कर पाने में इसलिए सफल हो पा रहें हैं क्योंकि हम विदेशी सरकार के हाथ में अपने ही विरुद्ध एक स्वैच्छिक संयंत्र के रुप में कार्यरत हैं। और इसके लिए यह पारकीय सत्ता अपने आत्मबल से नहीं बल्कि हमें अनभिज्ञता और अज्ञानता के अंधकार में रखकर हमारे ऊपर शासन कर रही है, ताकि हमें अपनी परिस्थितीयों और तैयारियों की हनक भी ना लग सके।[23]"

श्री तिलक ने 'केसरी' और 'मराठा' के माध्यम से तथा विभिन्न अवसरों पर अपने ओजस्वी भाषणों के माध्यम से एक शक्तिशाली जनमत तैयार करने के लिए निरंतर कोशिश करते रहे। 'केसरी' में वे लगातार ऐसे लेख लिखते रहे, जो किसानों मजदूरों, कारीगरों, जुलाहों तथा विभिन्न जनजातियों के हित संवर्धन और सुरक्षा पर व्यापक दृष्टिपात करती रही। उन्होंने इन वर्गों की सुरक्षा पर चिन्ता व्यक्त करते हुए इन्हें जनता के मुख्य अंग के रुप में स्वीकार किया तथा निरंतर इस बात पर बल दिया कि इनकी दशा में सुधार होना चाहिए। दूरदर्शी तिलक का कहना था कि यदि जनता संगठित होती है और अपने अधिकारों के प्रति जागरुक रहती है तो शासक आततायी नहीं बन पाते बल्कि जनमत को संतुष्ट करने के लिए तत्पर रहते हैं। श्री तिलक ने बल देते हुए कहा–

"ब्रिटिश नौकरशाही हमारी सुधि कभी नहीं लेगी, जब तक कि हम अपने सकारात्मक कृत्यों से उसे इस बात की अनुभूति ना करा दें कि हम उनके कृत्यों में अवरोध उत्पन्न करने या उनके संज्ञेय हितों पर विपरीत प्रभाव डालने की स्थिति में हैं।[24]"

यद्यपि कि यहाँ दो बातें ध्यान देने योग्य हैं, जैसा कि संत साठे ने लिख है कि स्वराज्य आन्दोलन में वे सामान्य जनता की अधिकतम् सहभागिता चाहते थे, न कि मुट्ठीभर विप्लववादियों द्वारा सशस्त्र विद्रोह। इसी प्रकार आचार्य वर्मा ने लिखा–

''उन्होंने कहा कि मैंने जनता को ब्रिटेन से सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए कभी भी प्रोत्साहित नहीं किया, न हीं कभी ब्रिटिश शासन को उलट देने का समर्थन किया है, किन्तु उन्होंने घोषणा की कि अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संवैधानिक तरीकों से संघर्ष करना चाहिए।[25]"

अर्थात् श्री तिलक ने लोगों को संवैधानिक आन्दोलन के लिए प्रेरित किया है। दूसरी तरफ कई अन्य विचारकों ने माना है कि तिलक ने सशस्त्र विद्रोह को भी समर्थन दिया है। जैसा कि जावेदकर ने निरीक्षण किया है–

"तिलक का मत था यद्यपि स्वराज्य आन्दोलन में शान्तिपूर्ण संघर्ष राष्ट्र का नेतृत्व कर सकती है, परन्तु अन्ततः यह तरीका अपर्याप्त सिद्ध होगा जबतक कि सशस्त्र आन्दोलनकारी इस संघर्ष में अपनी आवश्यक भूमिका नहीं निभाते। परन्तु वे आगे लिखते हैं, ठीक इसी समय श्री तिलक इस बात से भी सावधान थे कि सशक्त विद्रोह तब तक कदापि सफल नहीं हो सकता जब तक कि सामान्य जनता अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होकर शान्तिपूर्ण आन्दोलनों में भागीदार बने।[26]"

परन्तु जब हम श्री तिलक की विचारधारा, दर्शन और शैली का अन्वेषण करते हैं तो पाते हैं कि आक्रामक वाणी और कटु सत्य के समर्थक होने के कारण वे आक्रामक राष्ट्रवाद के समर्थक नहीं हो जाते हैं, बल्कि अपने मूल दार्शनिक ग्रंथ 'गीता रहस्य' में इस प्रकार की समस्त समस्याओं पर दार्शनिक समाधान देते हुए लिखते हैं–

''जहाँ तक सम्भव हो एक मनुष्य को किसी कुविचारी का प्रतिकार अन्तिम संभावानाओं तक पवित्र संसाधनों से हीं करना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि बुराई का प्रतिकार करने के लिए बुराई का हीं सहारा लिया जाय। परन्तु यदि एक बुराव्यक्ति हिन्सात्मक बुराई करता है, तो जनहित के दृष्टि से अन्तिम अस्त्र के रुप में कर्मयोगी को इसीप्रकार के संसाधनों से उसका संहार करने में नहीं हिचकिचाना चाहिए।[27]"

इस पूरे गतिरोध पर मुख्यरूप से इस प्रश्न पर कि श्री तिलक ने सशस्त्र विद्रोह का समर्थन किया था या नहीं? क्या उन्होंने संवैधानिक आन्दोलन को हीं सम्पूर्ण मुक्ति आन्दोलन के नेतृत्व के लिए प्रथम वरीयता दी थी? क्या स्वराज्य आन्दोलनों में सशस्त्र और संवैधानिक दोनों ही साधनों को उन्होंने वरीयता दी थी? उनकी जीवनी लेखक एन० सी० केलकर की टिप्पणी ज्यादा सटीक स्पष्टीकरण देती हैं। केलकर के अनुसार, तिलक मानते थे–

''भारतीय मुक्ति आन्दोलन के प्ररिप्रेक्ष्य में सशस्त्र विद्रोह सम्भव नहीं है। क्योंकि मूलरुप से वे इस बात पर आवश्वस्त थे कि 'सशस्त्र या शान्तिपूर्ण स्वतंत्रता संघर्ष तब तक सफल नहीं हो

सकता जब तक कि लोग पूर्णरुपेण विदेशी सत्ता के प्रति अनाकर्षित और निराश नहीं हो जायेगें और उसका प्रतिरोध करने के लिए उठ खड़े नहीं होगे।[28]''

ऐसा प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में दूरदर्शी तिलक किसी प्रकार के संसय में नहीं थे, इसलिए लोगों को जागृत करने सम्बन्धी प्राथमिक उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिए नित नवीन प्रयोग करते रहते थे। उनका सम्पूर्ण ध्यान लोगों को स्वराज्य के सम्बन्ध में शिक्षित करने और अनिवार्य राष्ट्रीय आवश्यकता पर आश्वस्त करने का था। वे जनजागरुकता को राष्ट्र की पहली आवश्यकता मानते थे। समीक्षक संत साठे ने लिखा है–

''यह पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि श्री तिलक उन भारतीय नेतृत्वकर्त्ताओं की प्रथम श्रेणी में आते हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम संगठित जनमत के अभिप्राय और महत्व की पहचान की।[29]"

श्री तिलक ने स्वराज्य के स्पष्ट स्वरुप का व्यापक वर्णन किया और सामान्यजन के समक्ष यह स्पष्ट कर दिया कि वास्तविक रुप से हमारा विकास तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण भारत की आन्तरिक व्यवस्था पर हम नियंत्रण कर लें। इसी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने घोषणा किया–

''हमें निर्भयता से कह देना चाहिए कि सारा राज्य, स्वराज्य माँग रहा है। सरकार को यह बात जता देना है कि हम स्वराज्य चाहते हैं। इसमें पैर पीछे हटाने की जरूरत नहीं है। स्वराज्य हमारा हक है और मैं यहाँ तक कहूँगा कि यह हमारा धर्म है। आप वैसे हीं हमें स्वराज्य से जुदा नहीं कर सकते जैसे अग्नि से उष्णता।[30]

स्पष्ट है कि श्री तिलक के 'स्वराज्य' की संकल्पना मूलरुप से मौलिक एवं बौद्धिक है। उन्होंने स्वराज्य की संकल्पना किसी प्रकार अद्‌भुत या ऐतिहासिक सिद्धान्तों के आधार पर नहीं दी है, न हीं यह कोरी भावानात्मक संकल्पना है जहाँ लोगों की भावनाओं को भड़काकर सत्ता को पलट दिया जाता है। श्री तिलक ने लोगों को यथार्थ के धरातल पर 'स्वराज्य' के अनुकूल अपनी माँगों को प्रचारित करने के लिए एक बष्हद योजना बनायी थी। उन्होंने नागर भाषण के दौरान स्पष्ट कह दिया–

''किसी प्रकार का प्रभावशाली सुधार चाहे वह सामाजिक बन्धनों से सम्बन्धित हो, चाहे वह शैक्षिक सुधारों से सम्बन्धित हो या फिर आर्थिक प्रगति का हीं मुद्दा क्योंना हो, स्वराज्य के बिना असम्भव है।[31]"

उनके द्वारा इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि स्वराज्य प्रत्येक राष्ट्र के लिए न केवल एक प्राकृतिक अधिकार और नैतिक आवश्यकता है, वरन इसे प्राप्त करना उसका बाध्यकारी नैतिक उत्तरदायित्व है।

सन्दर्भ

1. तिलक, लोकमान्य. हिज राइटिंग एण्ड स्पीच, पृष्ठ **338.**
2. गाँधी. (1990). हिन्द स्वराज।
3. वही.
4. तिलक, दर्शन. सरवटे एवं भण्डारी. पृष्ठ **146–147.**

5. तिलक, लोकमान्य. जीवन और दर्शन. वी० पी० वर्मा. पृष्ठ **447–448.** (हिजराइटिंग एण्ड स्पीचेज. पृष्ठ **354.**)
6. तिलक, बाल गंगाधर. गीता रहस्य. पृष्ठ **183–185.** (अट्ठाइसवाँ संस्करण)
7. (1917). कानपुर जनसभा को संबोधन. (हिजराइटिंग एण्ड स्पीचेज) 1 जनवरी।
8. तिलक, लोकमान्य. (1916). हिजराइटिंग एण्ड स्पीचेज. पृष्ठ **175.** (नागर भाषण, 1 जून 1916 ई०)
9. 1 मई 1916 ई0 को हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी में भाषण (हिज राइटिंग एण्ड स्पीचेज. पृष्ठ **115.**)
10. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन. पृष्ठ **272.**
11. तिलक, दर्शन. सरवटे एवं भण्डारी. पृष्ठ **153–162.**
12. तिलक, लोकमान्य. हिज राइटिंग एण्ड स्पीचेज. पृष्ठ **179.** (1 जून 1916, नागर में भाषण)
13. वर्मा, वी०पी०. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन. पृष्ठ **273.**
14. तिलक, दर्शन. सरवटे और भण्डारी. पृष्ठ **183–185.**
15. तिलक, दर्शन. सरवटे और भण्डारी. पृष्ठ **201–202.**
16. तिलक, समग्र. खण्ड IV. पृष्ठ **923.**
17. तिलक, समग्र. खण्ड IV. पृष्ठ **273.**
18. तिलक, समग्र. खण्ड III. पृष्ठ **77.**
19. तिलक, लोकमान्य. हिज सोसल एण्ड पोलिटिकल थाट. संत साठे. पृष्ठ **9.**
20. तिलक, लोकमान्य. हिज राइटिंग एण्ड स्पीचेज. पृष्ठ **213.** (1 जून 1916 ई० को नागर भाषण)
21. तिलक, बालगंगाधर. टी०बी० पर्वते. पृष्ठ **288–290.**
22. तिलक, बालगंगाधर. टी०बी० पर्वते. पृष्ठ **288–290.**
23. तिलक, समग्र. खण्ड VII. पृष्ठ **560.**
24. तिलक, समग्र. खण्ड IV. पृष्ठ **514.**
25. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन. पृष्ठ **273.**
26. लोकमान्य भारतीय राजनीतिक चिन्तन. पृष्ठ **273.**
27. तिलक, बाल गंगाधर. गीता रहस्य. पृष्ठ **358.**
28. केलकर, एन०सी० तिलक चरित्र. खण्ड तीन. पृष्ठ **13.**
29. तिलक, लोकमान्य. हिज सोसल एण्ड पोलिटिकल थॉट. पृष्ठ **17.**
30. तिलक, दर्शन. सरवटे एवं भण्डारी. पृष्ठ **208.**
31. तिलक, लोकमान्य. हिज सोसल एण्ड पोलिटिकल थॉट. पृष्ठ **18.**